(पुस्तक समीक्षा)

अरुणाचली स्त्री के श्रम, संघर्ष और साहस का जीवंत दस्तावेज 'मेरी आवाज़ सुनो'

राजीव रंजन प्रसाद

हिंदी साहित्य लेखन का इतिहास अरुणाचल प्रदेश में बहुत पुराना नहीं है। हिंदी साहित्य में शुमार आप जिन भी लेखकों को जानते हैं, उनमें सबसे पहले जुमसी सिराम का नाम समादृत है। अरुणाचल प्रदेश के उपन्यासकारों में जुमसी सिराम हिंदी के पहले लेखक हैं। उनका उपन्यास 'मेरी आवाज सुनो' अनुज्ञा बुक्स से इसी वर्ष छपकर आया है। यह पुनर्प्रकाशित उपन्यास आदिवासी स्त्री के जज़्बातों को बहुत ही सजीव ढंग से दिखाता है; जीवंत तरीके से चित्रण करता है। इस उपन्यास की कथावस्तु में स्थानीयता-बोध का वैश्विक-सूत्र है, जिसमें स्त्री की बराबर की हकदारी और मुक्ति की बात अनुरक्षित है। सामाजिक बंधनों में जकड़ी स्त्री अपनी पीड़ा और वेदना में किस तरह घुटती है तथा अपने जीवन के तमाम संत्रास झेलती है; यह इस उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य है। जुमसी सिराम कथा-चरित्र के बाबत कहते हैं-''यह उपन्यास हमारे प्रदेश में फैली एक कुरीति 'नेप्प निदा' की आलोचना करता है। 'नेप्प निदा' का मतलब है- पेट विवाह। इस उपन्यास के कथानक में कुछ सच्ची घटनाएँ भी शामिल हैं। लेकिन उपन्यास की आधारभूमि का किसी व्यक्ति या घटना से सीधा संबंध नहीं है।" पुराने घाव भर भले जाते हों, लेकिन उसकी टीस जिंदा रहती है। लेखक को गालो जनसमाज की यह कुरीति आदिवासी चेतना के विरूद्ध मालूम हुई, जिसको केंद्रीयता प्रदान करते हुए इस उपन्यास की रचना की। 'नेप्प निदा' पर आधारित यह उपन्यास वास्तव में आदिवासी आत्मा की अकुंठ मुक्ति का उपन्यास है। देखना होगा कि आप चाहे कितने भी आधुनिक अथवा प्रगतिशील क्यों न हो जाएँ; पुरानी परछाई याद आती ही है। आज अरुणाचल प्रदेश की स्त्रियाँ जितनी उन्मुक्त, अपने निर्णय लेने में स्वतंत्र, अनाश्रित, आर्थिक रूप से संपन्न आदि दिखाई पड़ती हैं; यह सब बदलाव पिछले कुछ दशकों का है। इसमें भी आंशिक सच्चाई ही है। दरअसल, यह बदलाव ऊपरी तौर पर स्त्रियों की उन्मुक्त छवि और उनकी स्वतंत्र इयता को दिखाता है, लेकिन आंतरिक सचाई कुछ और ही है। अरुणाचल प्रदेश का आदिवासी समाज स्त्रियों को लेकर कई तरह के 'टैबू' को स्वीकार करता है। बहुपति विवाह, बहुपत्नी विवाह आदि प्रथाएँ इनमें शामिल हैं, जिनको यहाँ का समाज मान्यता देता है। जुमसी सिराम ने ऐसे ही एक जरूरी विषय को अपने कथानक के लिए चुना, जिसका नाम है- 'मेरी आवाज सुनो'। आदिवासी जनसंवेदना और सरोकार से गहरे जुड़े लेखक वीर भारत तलवार इस पुस्तक में अपने दो शब्द जोड़ते हुए कहते हैं-''जुमसी सिराम ने इस उपन्यास में स्त्रियों को अपनी पहचान, अपनी इच्छा, अपना स्वतंत्र अस्तित्व और अपने अधिकारों का सवाल उठाया है। उन्होंने अपने समाज की उत्पीड़ित स्त्रियों के हकों की आवाज़ बुलंद की है और हिंदी में लिखकर इस आवाज को पूरे भारत तक पहुँचा देने की कोशिश की है।" प्रो. तलवार यह भी बताते हैं कि-''इस उपन्यास में एक प्रेमी जोड़े के तीव्र भावावेश के साथ हृदय की सरलता और सचाई को दिखाया गया है। गलत और अन्यायपूर्ण परंपराओं के आगे सिर ना झुकाने की जिद दिखाई गई है। इस उपन्यास में जुमसी हमें एक ओर अधिक न्यायपूर्ण भारतीय समाज बनाने के लिए प्रेरित करते हैं।"

यह प्रेरणा शेष भारत के रहवासियों के लिए कितना प्रेरणास्पद है; इसका फौरी निर्णय न करें, तो भी अरुणाचल प्रदेश के लिए यह उपन्यास सचमुच 'माइलस्टोन' है। स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक प्रेम पर सामाजिक संकट के मेघ किस तरह गरजते-बरसते हैं, इसका चित्रण जुमसी सिराम ने अपने इस उपन्यास में बखूबी किया है- "आयि और आलुक के बीच अब शीशे की ऐसी दीवार खड़ी हो गई थी जिसके एक ओर आलुक था तो दूसरी ओर आयि। वे एक-दूसरे को देखकर भी नहीं देख सकते थे; छू नहीं सकते थे। वे एक ही दुनिया में रहकर भी अब एक-दूसरे के लिए मरे हुए से थे। आलुक और आयि अपने असफल प्यार के गम में रो रहे थे और दुनिया उनका मजाक उड़ा रही थी। आलुक को गद्दार कहकर दोषी ठहराया जा रहा था। आयि को कुल-कलंकिनी और पतिता कहकर लोग थूक रहे थे।"

शुद्धता और शुचिता के प्रश्न आखिर कौन खड़े करता है? क्या वे खुद दूध के धुले होते हैं? क्या उनकी अपनी जिंदगी इतनी आत्मीय, उदात्त और खुलेपन से सधी होती है। यदि नहीं, तो बेहूदगी की ऐसी भाषा और लानत-मलालत वाली ऐसी संकीर्ण निगाह से औरों की निजता का उल्लंघन किस तरह सही ठहराया जा सकता है? क्यों सामाजिक ठेकेदार दो पुनीत आत्माओं को परस्पर मिलने में इतनी सारी बाधाएँ खड़ी कर देते हैं? यह प्रश्न असहज कर देने वाला है जिसे जुमसी सिराम के इस उपन्यास ने बेहतरीन ढंग से उठाया है। आज समय बदला है, तो प्रेम भी पेशेवर हो गए हैं। अब प्रेम की भाषा बोलते टिटिहरी-प्रेमी युगल हैं। इनके लिए देह का आकर्षण ही सब कुछ है। उनकी आत्मा आलुक और आयि की तरह नहीं हो सकती है जो समाज के सामने विवश-बेजार थे, लेकिन अब भी अभिन्न थे, पूर्णतया संपृक्त।

आयि समझदार है और उसे अपने जैसों का हाल-दशा पाता है। वह सिर्फ अपने लिए या अपने बारे में नहीं सोचती है। उसका दु:ख साझा और सहोदर दु:ख है जिसमें अनगिनत स्त्रियों की वेदना, पीड़ा और आँख के लोर शामिल है। आयि एक जगह कहती है-''हमारे समूचे इलाके की स्त्रियाँ भी तूफान के घेरे में हैं। यहाँ तो हर स्त्री को हर दिन तूफान से जूझना पड़ जाता है। उजाला शब्द जैसे स्त्रियों के लिए है ही नहीं।"

आयि साहसी थी, बोलती हुई चेतना थी। वह सच से जूझती और न्याय के लिए हर संभव प्रतिकार करती दिखती है। आलुक भी उसके साथ तमाम सामाजिक जटिलताओं में बँधे होने के बावजूद आयि का साथ नहीं छोड़ता है। लेकिन वे लाख चाहकर भी असमय मृत्यु से नहीं बच सके। दोनों सामाजिक शोषकों, पीड़कों, दंभी और स्वार्थलोलुप लोगों के द्वारा वध कर दिए गए थे। अंत तक उनकी आवाज कोई नहीं सुनता है, लेकिन आश्चर्य कि एक स्त्री जो आयि का घोर विरोध करती आई थी; वह बदली हुई भाषा में जो बातें सार्वजनिक ढंग से कहती है; वह इस उपन्यास का मूल ध्यातव्य है-''मैं अंधी हो गई थी, पर अब हमारी आँखें खुल गई है। आज यायि का अंत नहीं हुआ है। उसके जख़्मों के दाग, खून का एक-एक कतरा आज उछलकर कह रहा है कि-'मेरी आवाज सुनो'; ये घर, ये देश, ये सारा संसार स्त्रियों का है। आयि, समाज की सताई हुई पीड़ित, निरक्षर और निर्बोध स्त्रियों के बोझ को अपने ऊपर लादकर अकेली लड़ती रही। अकेली दौड़ती रही। अकेली एक शक्ति बनकर बोलती रही। पर हमने उस साहसी औरत को नहीं पहचाना।"

सबसे बड़ी बात कि उपन्यास में आयि की आहुति के बाद एक सामाजिक बदलाव देखने को मिलता है। लोग अपनी ग़लतियों पर शर्मिंदा होते हैं। सब मिलजुकर स्वीकार करते हैं कि- "हा-हाँ! हम पुरानी बुराइयों को नहीं अपनाएंगे। हम नारी के जरिए से आए हैं। उसी ने हमें जन्म दिया, पाला-पोसा, बड़ा किया। लेकिन हमने

उसके साथ मनचाहा व्यवहार किया। जिनके पास धन-दौलत है, वे दर्जनों पत्नी खरीद सकते हैं। बेचारे, आलुक के पास कुछ नहीं था। इसलिए उसे अपनी जान गँवानी पड़ी।" इसका निदान भी वे सब मिलकर खुद ढूँढ़ते हैं। वे संकल्प लेते हैं कि- "हमारे पूर्वजों ने भले ही आदिम तरीके से जीवन व्यतीत किया हो; लेकिन हमें तो आधुनिक जीवन-पद्धति को अपनाना चाहिए। इसका तो एक ही उपाय है कि शिक्षा का विस्तार हो।" आज अरुणाचल की स्त्रियाँ 'नेप्प निदा' की कुप्रथा से मुक्त हैं। हर तरह की बंधन से आजाद हैं। लेकिन उन्हें याद रखना होगा कि इस दिन को देखने के लिए पूर्व की स्त्रियों ने क्या आत्मसंघर्ष किया है। अपनी जान की आहुति दी। जुमसी सिराम ने अपने उपन्यास 'मेरी आवाज़ सुनो' के माध्यम से सचबयानी का साहसपूर्ण निर्णय लिया है। वह समाज के ऊपर कोई आरोप या लांछन नहीं मढ़ते, बल्कि वह उन कुरीतियों पर वार-प्रहार करते हैं, जिसके कारण समाज में स्त्रियों के प्रति दोहरा आचरण और भेदभाव होता है। अपनी सजग चेष्टा और संवेदनशील रचनाशीलता के माध्यम से समाज को सही दिशा देने का जो बीड़ा जुमसी सिराम उठाते हैं, वह महज लेखकीय उत्तरदायित्व नहीं है। इस तरह के लेखक समाज के असल नायक होते हैं जिनसे समाज का भविष्य रौशन होता है।

आईआइएएस, शिमला के पूर्व फेलो और आदिवासी अध्ययन के जानकर डॉ. अभिषेक कुमार यादव का मत है कि-''साहित्य महज ज्ञानानुशासन की एक विधा ही नहीं है, बल्कि समय, समाज, सभ्यता और संस्कृति के लंबे काल-प्रवाह का एक दस्तावेज भी है। हम साहित्य को न तो तथ्यों से परे ले जाकर पढ़ सकते हैं और न ही साहित्य को केवल तथ्यों की कसौटी पर कस सकते हैं। साहित्य एक ऐसी विधा है जो तब से चली आ रही है जब मनुष्य ने लिखना भी शुरू नहीं किया था। अपने अनुभवों को अपने सपनों से मिलाकर बनाया मनुष्य ने साहित्य को। और चूँकि साहित्य आदमीयत के सपने के साथ जुड़ा था, इसीलिए यह प्रक्रिया दोतरफा चलती रही। साहित्य ने इंसानियत के भविष्य और वर्तमान को गढ़ा तो इंसानों ने साहित्य के रूप में अपने अमूल्य जीवन-अनुभवों को सदा के लिए सुरक्षित कर दिया।" जुमसी सिराम हिंदी लेखक के रूप में अपनी भूमिका बखूबी निभाते हैं। उन्होंने अपने समय के कैनवास पर लेखन के माध्यम से जो और जैसा साहित्य रचा-बुना है; उसकी आने वाली पीढ़ी तामील करेगी, इनको शिद्दत से याद रखेगी। यह अपेक्षा अवश्य की जानी चाहिए।

*(**लेखकीय परिचय:** डॉ. राजीव रंजन प्रसाद वर्तमान में राजीव गांधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर हैं। गंभीर शोध-अध्येता एवं प्रयोगधर्मी अध्यापक के रूप में आपकी विशिष्ट पहचान है। मोबा. 6909115086, ईमेल: rajeev.prasad@rgu.ac.in)*